शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

विनोदकुमार शुक्ल का काव्य संसार

अंजू कृष्णियाँ (शोधार्थी)
डॉ. स्वर्णा (शोध निर्देशिका)
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
बनस्थली विद्यापीठ
राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

विनोद कुमार शुक्ल काव्य जगत में आज ऐसे कवि के रूप में बहु प्रतिष्ठित हैं, जिनकी कविता को बिना उनके नाम के भी जागरूक पाठक पहचान लेते हैं। उनकी कवितायें कविता के तुमुल कोलाहल के बीच अपने चुपचाप सृजन में व्यस्त दिखती हैं। किसी भी तरह दिखावे, छलावे, भुलावे से दूर अपनी राह का खुद निर्माण करती और उस पर निर्भय अकेले चलने की हिम्मत रखती, वह अपनी मंजिलें तय करने में संलग्न है। विनोद जी की काव्य संवेदना के विस्तार को देखने के लिए उनकी कविताओं की गहराई में उतरना होगा। उनकी काव्यात्मक जटिलता इसीलिए ऊपर से दिखाई पड़ती है, क्योंकि उनकी काव्य संवेदना की तहें इकहरी न होकर दोहरी और तिहरी हैं। देखा जाए तो उनकी काव्योपलब्धि में सिर्फ अनोखे काव्य-शिल्प का ही योगदान नहीं है, बल्कि काव्य वस्तु में यथार्थ को देखने का नजरिया भी उनके समकालीनों से अलहदा रहा है। कहना चाहिए कि विनोद कुमार शुक्ल का काव्य संसार जीवानानुभव को प्राचीनता से, प्रकृति से मनुष्य को जिस तरह उद्घाटित करती है, उससे कविता की एक दूसरी दुनिया की खिड़की खुलती है। इस दुनिया को देखने लिए विनोद कुमार शुक्ल जैसी अतिरिक्त देखने की दृष्टि और कला चाहिए।

प्रस्तावना

बीसवीं शती के सातवें-आठवें दशक में विनोद कुमार शुक्ल एक कवि के रूप में सामने आए थे। धारा और प्रवाह से बिल्कुल अलग, देखने में सरल किंतु बनावट में जटिल अपने न्यारेपन के कारण उन्होंने सुधीजनों का ध्यान आकृष्ट किया था। अपनी रचनाओं में वे आपादमस्तक मौलिक, न्यारे और अद्वितीय थे, किन्तु यह विशेषता निरायास और कहीं से भी ओढ़ी या थोपी नहीं थी। यह खूबी भाषा या तकनीक पर निर्भर नहीं थी। इसकी जड़ें संवेदना और अनुभूति में थी और यह भीतर से पैदा हुई खासियत थी। तब से लेकर आज तक वह अद्वितीय मौलिकता अधिक स्फुर, विपुल और बहुमुखी होकर उनकी कविता उपन्यास और कहानियों में उजागर होती आई है। विनोद कुमार शुक्ल कवि और कथाकार हैं। दोनों ही विधाओं में उनका अवदान अप्रतिम है।

वे स्वयं को मूलतः कवि स्वीकार करते हैं। ज्योतिश्वरी से हुई बातचीत में वे कहते हैं, "मूलतः तो मैं कवि हूं और कविता या कवि कहलाना या कथाकार या उपन्यासकार या निबंधकार कहलाना इनमें कोई अंतर ही नहीं है। मैंने जो लिखा है ज्यादातर तो मुझको यह कहते हैं कि उपन्यासकार हूं। मैं भी यह

सोचता हूं, उपन्यास के उबड़-खाबड़ रास्ते पर चलते हुए अचानक मुझे कविता का एक गहरा गड्ढा मिल जाता है और मैं गहराई में डूब जाता हूं तो उपन्यास भी कविता की तरफ पहुंचने का एक रास्ता है। मेरे लिए कहानी भी कविता तक पहुंचने का एक रास्ता है। अगर कहीं निबंध लिखूंगा तो यह भी मेरे लिए कविता तक पहुंचने का ही एक रास्ता होगा। मैं कहीं से भी चलूँ रचना के लिए मैं पहुंचूंगा कविता की ही तरफ।"[1] एक कवि के रूप में वे अपने कविता संग्रह 'लगभग जयहिंद' (1971), 'वह आदमी गरम कोट पहिनकर चला गया विचार कीतरह (1981), सब कुछ होना बचा रहेगा (1992), अतिरिक्त नहीं (2000), कविता से लम्बी कविता (2001) के माध्यम से समकालीन हिन्दी कविता में सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हैं। विनोद जी की कवितायें समकालीन भारतीय समाज के जीवन संघर्षों का जीवंत दस्तावेज है तथा जीवन में जो कुछ भी सुन्दर एवं कोमल है उसे बचाये रखने का सतत प्रयास भी है। उनका लेखन हर उस आदमी के पक्ष में खड़ा है जो शोषित एवं उपेक्षित है। चाहे वह स्त्री हो, श्रमिक हो, दलित या आदिवासी वर्ग उनकी यही विशेषता उन्हें जनपक्षधरता से जोड़ देती है। ऐसे उम्दा कवि के कविता कर्म को समझने का प्रयास हम यहाँ करेंगे।

विनोद कुमार शुक्ल की पृष्ठभूमि मध्यवर्गीय निजी संस्कार और परिवेश है और उनकी रचनाओं का संसार इसी मध्यवर्ग से निर्मित नजर आता है। इस वर्ग से जुड़ी छोटी से छोटी सचाई को भी वे प्रस्तुत करते हैं। उनके द्वारा लिए गए शब्द रोजमर्रा के जीवन के शब्द होते हैं। व्यक्ति के परिवेश और उसके संघर्षमय संसार के प्रति कवि हमेशा सजग रहता है। मुहल्ले के लोगों के द्वारा चावल के एक-एक दाने को बीनना शुक्ल जी समूह की ताकत की तरह देखते हैं, जो उनके लोकजीवनसे लगाव के साथ सामाजिक जनवादी चेतना को भी उजागर करता है। जैसे :

"यह जमीन पर गिरे
दो किलो चावल के एक.एक दानेको बीनकर
मुहल्ले के लोगों द्वारा
इकट्ठा करने का
इस तरह पेट से ज्यादा
समूह की ताकत बढ़ाने का हिसाब है।"[2]

कवि समग्र जीवन के खंड-चित्र दिखाकर ही नहीं सन्तुष्ट होता, बल्कि जीवन के जिस पक्ष को वह चुनता है। उसमें वह अपना पक्ष सतर्क काव्य-विवेक के साथ रखता है बाहर से बेहद शांत और ठंडी दिखने वाली इन कविताओं में बोरसी की आग सरीखी उष्मा और बेचैनी है। जो दुनिया के उस मनुष्य के पक्ष में खड़ी है जो असहाय और निहत्था है।" कवि ऐसे मनुष्यों की दुर्लभ प्रजाति को बचाने के लिए कृतसंकल्प है:

"मुझे बचाना है। एक-एक कर
अपनी प्यारी दुनिया को
बुरे लोगों की नजर है
इसे खत्म कर देने को" 3

राजनैतिक बहस में सूखे को लेकर एक व्यंग्यात्मक कविता है, जिसमें विनोद कुमार शुक्ल व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं। सरकार और पूंजीपति लोग तो यहाँ पूरा लाभ उठाकर मजा करते हैं और जनता को

सुविधा के नाम पर शोषण मिलता है। नेता लोग श्रम, मेहनत, जनवादी मूल्यों और आदर्शों की बात करते हैं, किन्तु स्वंय उससे विमुख रहते हैं। इस राजव्यवस्था में संसद जब तक कंघी का आकार लेगी उस समय तक सरकार के सिर के बाल ही गायब हो जायेंगे अर्थात इस राजनीतिक व्यवस्था की विद्रूपता, अंतर्विरोध, जनविरोधी यथार्थ से कवि में गहरा असंतोष है। इसे हटाने की लम्बी प्रक्रिया में यह चिंता है कि कहीं हम पीछे न छूट जाएँ।

और लहर का चेहरा नदी से मिलता-जुलता है
पानी से भरा बाल्टी का चेहरा नदी से मिलता जुलता है
संसद से कंघी के आकार के होने की प्रक्रिया में
सरकार के सिर पर बाल नहीं थे"[4]

एक समय था जब समाज में मानवीय संवेदनों की पूजा होती थी। आज का आदमी संवेदन शून्य हो गया है। इसी संदर्भ में विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं : मानव को जानना महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि उसकी पीड़ा को जानो और समझो और उसके साथ चलने के लिए हाथ बढ़ाओ। सही पीड़ा मानव और मानव के बीच पुल बनाती है। किसी मानवकी पीड़ा कोजानना ही सच्चा जानना है।

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था
हताशाको जानता था
इसलिए मैंउस व्यक्ति के पासगया
मैंने हाथ बढ़ाया
मेरा हाथ पकड़करवह खड़ा हुआ
मुझे वह नहीं जानताथा
हम दोनों साथचले
दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे
साथ चलने को जानते थे।"[5]

इस मैदानी इलाके में कविता में मानवीय संसार को निकट से देखा जा सकता है। इस मैदानी इलाके में अकाल, दुकाल और अभावहीनता जिंदगी जीते लोगों की पलायन समस्या उजागर हुई है। कवि की कामना है कि विध्यांचल पर्वत अपनी जगह से हटकर मोटर स्टैंड या कचहरी से सट कर खड़ा हो जाए गाँव की पाठशाला या खेत के पीछे सतपुडा आ जाए, गंगा के किनारे से हटकर महानदी के पास आ जाए। इसी के साथ ही यह इच्छा व्यक्त करता है कि गरिबंद नांदगाँव, मुरादाबाद क्रमशः गंगा से, फरीदकोट से और मद्रास से जुड़े हों ताकि किसी को भी अपना गाँव घर-बार छोड़कर न जाना पड़े। कोई मनुष्य विस्थापित न हो।

"सब जगह के पास
कि सब जगह हो सब जगह के पास
और अकालए आतंक दुकाल में अबकी साल
गाँव से एक भी विस्थापित न हो।"6

आज हमारी समाज व्यवस्था में जो व्याप्त है हिंसा व्याप्त है। उसे देखकर विनोद कुमार शुक्ल चिंतित हैं और उन्हें दाढ़ी की ब्लेड भी एक हथियार के रूप में नजर आती हैं। वे कहते हैं :

"कि अंधेरा शायद नकली दाढ़ी-मूंछ लगाकर
आया होगा
देश की सुरक्षा के लिए चारों दोस्तों ने
और मैंने
पांच नई ब्लेड बतौरहथियार के
समर्पित किए याआत्मसमर्पण किया था।
क्रांति हम लोगों से नहीं हुई थी।'[7]

पूंजीवाद और उपभोक्तावाद का विरोध करते हुए मध्यवर्गीय मनुष्य की पीड़ा महसूस करता कवि सब्जी बाजार में जहाँ गरीब सब्जी वाले हैं और अमीर महंगे खरीददार, लेखक की चाह यहाँ घर का होने की है उन अमीर खरीददारों के वर्ग से हटकर गरीब निम्न मध्यवर्ग की होने की है। इसलिए वह कहता है :

"मैं सोचता हूं कि विद्रोहीन कहलाने के लिए
मुझे कौन-कौन-सी सब्जी नहीं खरीदनी चाहिए।"[8]

आज के भौतिकवादी यांत्रिक युग में व्यक्ति बहुत अधिक स्वार्थी मतलबपरस्त हो गया है, उसे न तो अपने से मतलब है न समाज से। घर के माहौल में लगातार घर करते जा रहे संबंध विहीनता को कवि विनोद कुमार शुक्ल अपनी कविता 'तथा' में बेहद संवेदनात्मक धरातल पर उभारते हैं :

"तथा
घर के लोगों से घर का संबंध नहीं
तथा यह समाज सामाजिक समाज नहीं
तथा थोड़ी दूर पर रहने वाला मेरा भाई
कई दिनों से मिला नहीं
तथा सड़क से जाते हुए वह मुझे दिखा
उसने भी देखा
पर चला गया।"[9]

'तथा' कविता में कवि ने मात्र पारिवारिक संबंधों का ही नहीं पूरे माहौल की बेचैनी को शब्दबद्ध किया है। सामाजिक संरचना की किसी एक इकाई में होने वाला परिवर्तन अनिवार्य रूप से अन्य इकाईयों को भी परिवर्तित कर देगा। समग्र रूप से उसे उद्घाटित करना सभी कवियों के बस की बात नहीं है। विनोद कुमार शुक्ल ने बेहद सजगता से सामाजिक संरचना की मूल इकाई से लेकर पूरे सामाजिक माहौल में व्याप्त अंतर्द्वंद को प्रस्तुत कविता में अभिव्यक्त किया है।

विनोद कुमार शुक्ल का मानना है कि जीवन को ईमानदार और कामकाजी होना चाहिए। अपनी जरूरत को इस तरह कम करे कि वातावरण से बाजार को कम किया जा सके, साथ ही साथ बाजार की सोच को भी प्रकृति को जस का तस छोड़ देना चाहिए। प्रकृति को नष्ट करने का समय तत्काल समाप्त होना चाहिए और उसे जितना प्राकृतिक बनाया जा सकेए बनाया जाना चाहिए। विकास की जो अवधारणा है,

उसमें मनुष्य की प्रजाति का नष्ट होना अंतिम परिणाम है। एक पत्थर का टुकड़ा भी नष्ट न हो, घास का तिनका भी, हरी घास की पत्ती भी, इसी से मनुष्य का जीवन और समाज बेहतर होगा। उनकी यह इच्छा उनकी कविताओं में स्पष्ट होती है :

"जितने सभ्य होते हैं
उतने अस्वाभाविक
आदिवासीए जो स्वाभाविक है
उन्हें हमारी तरह सभ्य होना है
हमारी तरह अस्वाभाविक
जगत का चंद्रमा
असभ्य चन्द्रमा है
इस बार पूर्णिमा के उजाले में
आदिवासी खुले में इकट्ठे होने से
डरे हुए हैं
और पेड़ों के अंधेरे में दुबके
विलाप कर रहे हैं
क्योंकि एक हत्यारा शहर
बिजली की रोशनी से
जगमगाता हुआ
सभ्यता के मंचपर बसा हुआहै।"[10]

विनोद कुमार शुक्ल को अपने समय से बहार ले जाकर इतिहास, परम्परा, संस्कृति यहाँ तक कि आदिमानव तक खींच ले जाती है, जहाँ से वे सबका पुनरीक्षण करते हैं। आज की अधिकांश कविता अपने वर्तमान को देखने के जिस तरह वर्तमान की सतह पर ही अपना माथाकूट रही है। उसे पता नहीं है कि वर्तमान को ठीक-ठीक देखने के लिए अतीत और भविष्य दोनों में झांकना होता है। विनोद कुमार शुक्ल की कविता वर्तमान के यथार्थ को पकड़ने के लिए अतीत और भविष्य दोनों ओर झाँकती है। फलतः उनकी कविता में दृष्टि की बहुलता और विशिष्टता दोनों साथ-साथ प्रकट होती है।

"कितना बहुत है
परंतुअतिरिक्त एक भी नहीं
एक पेड़ मेंकितनीसारीपत्तियां
अतिरिक्त एक पत्ती भी नहीं
एक कोयल नहीं अतिरिक्त
एक नक्षत्र अनगिनत होने के बाद
अतिरिक्त नहीं
गंगा अकेली एक होने के बाद।"[11]

विनोद जी की काव्य शैली अत्यधिक विशिष्ट हैं। एक कविता में यह व्यंजित करने के लिए कि संसद सरकार का कुछबिगाड़ नहीं सकतीए वे कहते हैं कि .संसद के कंघीके आकार के होने की प्रक्रिया में सरकार के सिर पर बाल नहीं थे।"[12] अक्सर वे बाहर से कोई उपमान न लाकर इस तरह की अभिव्यक्ति का सहारा लेते हैं। "स्थिर उतना ही, जितना एक पहाड़ के चित्र में एक पहाड़।"[13]

ध्यातव्य है कि यह सादी अभिव्यक्तिपहाड़और चित्रित पहाड़ की समानता दिखलाने से जोरदार हो गई है।

निष्कर्ष

इस तरह हम कह सकते हैं कि विनोद कुमार शुक्ल का काव्य संसार अपने समय और समाज की गहरी समझ से संपृक्त है। इसलिए उनका भाव बोध और विचार बोध उनके कविता शिल्प को एक नए रूपाकार में प्रस्तुत करता है। उनकी कवितायें बड़े सहज एवं सरल अदांज में अपने छोटे-छोटे कथ्यों के माध्यम से बड़ी-बड़ी बातें कह जाती है। ऐसी बातें जिनका वर्तमान और भविष्य की गहन चिंता है। सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाए तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। कवितायें उनकी आत्मा की उपज है। इसलिए उसमें एक सहजता अनिवार्यत दिखलायी पड़ती है। प्रकृति जैसे धरती पर पेड़ और पौधे लिखती है। उसी धीरज और तन्मयता के साथ विनोद कुमार शुक्ल अपना साहित्य रचते हैं। विनोद कुमार शुक्ल की आवाज धीमी है, लेकिन वह दूर तक सुनाई देनेवाली आवाज़ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 समालोचना, साहित्य विचार और कलाओं की, वेब पत्रिका, विनोद कुमार शुक्ल की जीतेश्वरी से बातचीत, 1 मार्च 2023

2 विनोद कुमार शुक्ल, वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 64

3 विनोद कुमार शुक्ल, सब कुछ होना बचा रहेगा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या48

4 विनोद कुमार शुक्ल, वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 14

5 विनोद कुमार शुक्ल, अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या13

6 विनोद कुमार शुक्ल, अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या22

7 विनोद कुमार शुक्ल, वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या16-17

8 विनोद कुमार शुक्ल, वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या18

9 विनोद कुमार शुक्ल, अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या15

10 विनोद कुमार शुक्ल, कभी के बाद अभी, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या27

11 विनोद कुमार शुक्ल, अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या21

12 विनोद कुमार शुक्ल, वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2026, पृष्ठ संख्या14

13 विनोद कुमार शुक्ल, वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या64